IJCRT.ORG ISSN : 2320-2882

INTERNATIONAL JOURNAL OF CREATIVE RESEARCH THOUGHTS (IJCRT)

An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

# भारतीय कला दर्शन

[1]Dr Rachna Pandey
[1]Asst Professor
[1]Kanaya Gurukul Maha vidyalaya

भारत में कला के उद्भव और विकास तथा विभिन्न कलात्मक उपलब्धियों के मूल में प्रागैतिहासिक काल से लेकर आधुनिक काल तक कलाकारों की महती भूमिका रही है। प्रत्येक कलाकार में सहज क्रियात्मक वृति होती है, जिसकी अभिव्यक्ति हेतु वह दो उपादानों पर आधारित होता है। प्रथम माध्यम और दूसरा प्रेरणा माध्यम के रूप में वह शब्द स्वर, रूप, रंग आदि का आश्रय लेता है[(1)] और प्रेरणा के रूप में वह प्रकृति धर्म, समाज इतिहास, व्यक्तिगत भाव–संवेग आदि का आश्रय लेता है इन प्रेरणाओं से आविर्भूत होकर कलाकार जो चित्र बनाता है उसमें समस्त ब्रहाण्ड की कल्पना समाविष्ट हो जाती है। भारतीय चित्रकार पाश्चात्य कलाकार की भांति आकृति के प्रदर्शित पक्ष तक सीमित नही रहता वरन् सृष्टि के रचयिता सदृश सम्पूर्णता को आन्तरिक चक्षु से प्रकट करता है।

भारतीय चित्रकला की एक अटूट परम्परा चिरकाल से दिखाई देती है जिसका इतिहास अत्यन्त विराट एवं रहस्यमयी है। कला और मानव का प्रारम्भ से ही घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। कला का सम्बन्ध दर्शन से भी है। विभिन्न दार्शनिकों ने अपनी–अपनी मान्याताओं के आधार पर कलाओं की विभिन्न परिभाषाएँ दी है। भारतीय संस्कृति तथा दर्शन के चार मुख्य प्रयोजन माने गये है। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष धर्म के द्वारा व्यक्ति उचित काम करता है, काम के द्वारा सुख की प्राप्ति अर्थ के द्वारा समृद्वि प्राप्त करता है। और मोक्ष के द्वारा ब्रह्म लीन हो जाता है। कला जीवन का अंग है। जीवन के प्रयोजन प्राप्त करने का एक माध्यम है। जीवन का क्रियात्मक रूप ही कला है। हमारी सारी चेष्टायें धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की प्राप्ति है। कला हमारे भौतिक जीवन की प्राप्ति के लिए है। कला हमारे भौतिक जीवन धर्म, अर्थ, काम का साधन होने के साथ–साथ मोक्ष प्राप्त करने से हमें सुख तथा आनन्द की अनुभूति होती है। कला में सुख आनन्द तथा परमानान्द हमें सत्य शिव तथा सुन्दरम के द्वारा प्राप्त होती है जब कला कृति में हमें सत्य शिव तथा सुन्दरम का आभास मिलता है तो हम आनन्दित हो उठते है। कला में इस आनन्द को रस और भाव की उत्पत्ति में देखा जाता है। इसलिए कलाओं के लिए रस और भाव को दिव्य दर्शन आवश्यक माना गया है[(2)] सारा काव्य रस पर आधारित है काव्य और अन्य सभी ललित कलाओं के लिए रस की उत्पत्ति नितांत आवश्यक मानी गई है। कुछ दार्शनिक ऐसे है जो अन्यों से पूर्णतः अलग उपयोगिता मे सौन्दर्य देखते है अर्थात जो वस्तु उपयोगी होगी वही सुन्दर होगी।[(3)] किन्तु यहाँ यह प्रश्न उठता है कि यदि इन दार्शनिकों की बात मान ली जाए तो क्या अन्धें व्यक्ति के नेत्रों को सुन्दर नही कहा जाएगा। यदि उपयोगिता में ही सौन्दर्य है तो सुराही घड़े से अधिक सुन्दर क्यों मानी जाती है जबकि दोनों का उद्देश्य जल को शीतल करना ही है। कभी–कभी ऐसा भी होता है कि एक वस्तु किसी एक के लिए उपयोगी होने पर सुन्दर है किन्तु दूसरे के लिए हानिकारक।

भारतीय दर्शन में सत्य शिव सुन्दरम् के रूप में सौन्दर्य की कल्पना की गयी है अर्थात सुन्दर वही है जो कल्याणकारी है तथा कल्याणकारी ही ईश्वर है अर्थात सुन्दर वही है जो ईश्वरीय है। लेकिन इसमें भी मतभेद है क्योंकि एक वस्तु सभी के लिए सुन्दर या ईश्वरीय हो यह आवश्यक नहीं। कुछ व्यक्ति आराधना को ईश्वर मानते है कुछ कर्म को। भारतीय विचारक सत्य, शिव, सुन्दरम् को कला रचना में उत्कृष्ट मानते हुए, इन्हे भारतीय सभ्यता तथा संस्कृति को आधारशिला मानते है सत्य, शिव, सुन्दरम् की कल्पना वेदों से मानी

जाती है जहाँ उन्हे त्रिगुणात्मक शक्तियों सत्व रज और तम का प्रतीक माना गया है जिसके अधिष्ठाता ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव है अर्थात ब्रह्मा–सत्व–सत्य, विष्णु–रज–सुन्दरम् तथा शिव–तम–कल्याण के प्रतीक है।[4] दर्शन के अतिरिक्त भारतीय परम्पराओं में वेदों से लेकर आज तक सत्य शिव सुन्दरम् की प्रतिष्ठा दिखायी देती है। विद्वान इन तीनों का अस्तित्व एक साथ स्वीकार करते है क्योंकि एक के बिना दूसरे का अस्तित्व नही माना जाता और जिस कला में सत्य, शिव, सुन्दरम् के गुण नही उसमें आनन्द नहीं।

कला की व्युत्पत्ति

भारतीय कला दर्शन है। उसका तात्पर्य केवल मनोविनोद या भोग–विलास ही है। कला शब्द का प्रयोग शतपथ ब्राह्मण तैत्तिरीय आरण्यक तथा अथर्ववेद में भी मिलता है किन्तु यहाँ कौशल शिल्प अथवा हूनर के अर्थ में इसका प्रयोग नही किया गया है। कला शब्द का यथार्थवादी प्रयोग भरतमुनि ने अपने नाट्यशास्त्र में प्रथम शताब्दी में किया ऐसा कोई ज्ञान नहीं, कोई शिल्प नहीं कोई विद्या नही जो कला न हो। कला संस्कृत भाषा से सम्बन्धित शब्द है जिसकी व्युत्पत्ति कल धातु से मानी जाती है। कुछ विद्वान इसकी व्युत्पत्ति 'क' धातु से मानते है।[5] 'क' (सुखम्) लाति 8 इति कलम् कं आनन्द लाति इति कला अन्य विद्वान कला' शब्द की व्युत्पत्ति 'कल' धातु से मानते है जिसका अर्थ है–प्रेरित करना।[6] भारत में कला का वर्णन वेदों से प्राप्त होता है। प्रागैतिहासिक काल के बहुत से उदाहरण कला की प्राचीनता के द्योतक है। भारतीय का विभाजन में सतयुग त्रेता, द्वापर और कलयुग का विवरण है। कला की अभिव्यक्ति के उदाहरण सभी युगों में प्राप्त होते है वेदों के साथ ही साथ उपवेदों का भी वर्णन है। इन उपवेदों मे कला क्षेत्र में अथर्ववेद का उपवेद स्थापत्य वेद और सामवेद का उपवेद गार्धय वेद माना जाता है।[7] भारत में कला के छः अंगों का भी विवरण मिला है। जो रूप भेद प्रमाण भाव, लावण्य योजना और वर्णिका भंग के नाम से वर्गीकृत किया गया है।[8] प्रो0 बलदेव उपाध्याय ने अपने भारतीय साहित्य शास्त्र में भरतमुनि के श्लोक के अनुसार कला को गति वाद्य और नृत्य के समान ही माना है।[9] और यही भामह, दण्डी ने भी माना है। पं0 भोलानाथ तिवारी के अनुसार––कला' शब्द ललित कला तथा शिल्प शब्द उपयोगी कला के लिए प्रयुक्त किया गया है लेकिन इससे पूर्व कला के स्थान पर शिल्प का ही प्रयोग हुआ है पाणिनी की 'अष्टाधायी' में शिल्प शब्द का ही प्रयोग ललित कला तथा उपयोगी कला दोनों के लिए किया गया है[10] कौशीत की ब्राह्मण में संगीत को भी शिल्प कहा गया है। इस प्रकार यह माना जा सकता है कि भरतमुनि के 'नाट्यशास्त्र' की रचना से पहले कला शब्द के स्थान पर शिल्प शब्द का ही प्रयोग अधिक प्रचलित था। '' शिवसूत्र–विमर्शिणी'' में वस्तु का रूप सुन्दर बनाने वाली विशेषता को कला कहा गया है[11]वात्स्यायन के ''कामसूत्र'' में तथा ''शुक्रनीति'' आदि ग्रन्थों में चौसठ कलाओं का उल्लेख उपलब्ध है[12] यद्यपि इन वाक्यों के नामांकन में अवश्य भेद है परन्तु सब कलाओं के अन्त स्वरूप के दृष्टिकोण में समानता प्रतीत होता है। पं0 क्षेमेन्द्र ने अपनी पुस्तक कला विलास में चौसठ को उपयोगी कलाओं के नाम से सम्बोधित किया है और उनका लक्ष्य धर्म अर्थ काम और मोक्ष माना है। अतः किसी प्रकार के कौशल पूर्ण क्रिया–सृजन को कला कहाँ जा सकता है जिससे अन्य काम मोक्ष की प्राप्ति सम्भव हो सके। इसके अधीन ललित और उपयोगी दोनों ही श्रेणी की कलाओं को सम्मिलित किया जा सकता है ललित कलाओं के अन्तर्गत संगीत, नृत्य, मूर्ति, चित्र और वास्तुकला ही आती है।[13] लेकिन कुछ विद्वान काव्य को भी ललित कला ही मानते है। श्री जयशंकर प्रसाद आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और पं0 नन्द दुलारे वाजपेयी काव्य को ललित कला ही मानते है[14] ''भृर्तहरि ने साहित्य को कला माना है।[15] कुछ विद्वान काव्य को मानकर उसे उपविद्या की श्रेणी में रखते है[16] उनका विचार है कि संगीत चित्र और काव्य तीनो को कला के अन्तर्गत आना चाहिये, क्योंकि तीनों के प्राणत्व ''रस'' सब मे समान रूप से विद्यमान है[17] उनके विचार में ''रस'' की उत्पत्ति काव्य में सबसे अधिक सम्भव हैं, जबकि संगीत और चित्र में इससे कम सम्भव है, यह धारणा नितान्त अशुद्व है, क्योंकि काव्य, संगीत और चित्र तीनों मे ही रस की स्थिति समान पायी जाती है।[18] जैसा कि चित्र सूत्रकार ने ''यथा नृत्ये तथा चित्रे'' के प्रसंग मे स्पष्ट किया है यह नृत्ये–संगीत+नृत्य=चित्र है। संगीत के स्वरों से उत्पन्न रसों मे ही सम्बन्धित माना गया है।[19] इस प्रकार यदि काव्य को कला मान लिया जाए तो कोई त्रुटि नही समझी जानी चाहिए।

कला को आर्ट के नाम से तेरहवीं शताब्दी में पुकारा गया। ''आर्ट'' शब्द लैटिन शब्द आर्स या आर्टेम से उत्पन्न माना जाता है जिसका अर्थ–बनाना उत्पन्न करना या फिर करना माना गया है इस प्रकार शारीरिक या मानसिक कौशल जिसका प्रयोग किसी कृत्रिम

निर्माण में किया जाये वह कला है 2–कला में कर्तव्य की प्रधानता होती है तो कौशलपूर्वक सुन्दर निर्माण ही कला है। प्लेटो ने कला को सत्य की अनुकृति माना है।[20] टालस्टाय ने भावपूर्ण किया या अभिव्यक्ति को जो देखने वाले को उसी भाव में विलीन कर दे ''कला'' कहा है।[21] लेकिन कुछ अन्य विद्वान कला को '' अभिव्यक्ति'' ही मानते है जिस अभिव्यक्ति में कौशल जुड़ा होना आवश्यक माना है।[22] किन्तु क्रोचे अभिव्यक्ति को आन्तरिक मानते है उसको ब्राह्य वस्तुसत्ता से सम्बन्धित नही मानते है। उनके अनुसार कलाकृति में प्रकृति का दर्शन मूर्ति या चित्र आदि के रूप में होता है।[23]कला की व्याख्या करना ही कला को समझ लेना है जबकि सत्य यह है आज तक कोई भी कला की सम्पूर्ण व्याख्या नहीं कर पाया है। भारतीय दार्शनिक दृष्टिकोण से कला ईश्वर की कृति की अनुकृति है।

उपरोक्त विवेचना से स्पष्ट होता है कि कला का अर्थ व्यापक परिधि में उपलब्ध है और कला व असंख्य रूप तथा भेद किये जा सकते है। लेकिन कला का प्रयोग जब ललित–कला तक सीमित किया जाता है तो उसको संकुचित प्रयोग में ही लिया जाता है। अतः अभिव्यक्तिकरण के कौशल को ''कला' कहना उपयुक्त है। अब प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि अभिव्यक्ति या कला का प्रयोजन क्या है? इससे सम्बन्धित विभिन्न मत है। कला के प्रयोजन–यश की प्राप्ति धनोपार्जन सेवा आनन्द प्राप्ति और विश्व–कल्याण आदि हो सकता है। इस प्रकार कला को सौन्दर्य पूर्ण कौशलयुक्त एवं सुखद अभिव्यक्ति माना जाना चाहिए।

संदर्भ–सूची

1. डा0 बलदेव उपाध्याय, भारतीय साहित्य शास्त्र, पृ0सं0–207

2. श्री विष्णुधमेत्तिर पुराण, चित्रसूत्र–$\frac{5}{7}$

3. के. एल. आर. स्वामी इण्डियन ऐस्थेटिक्स, पृष्ठ सं0–193

4. आचार्य मम्मट काव्यप्रकाश, प्रथमोल्लास पृ0सं0–5

5. नाट्यशास्त्र (1–113) सं0 बटुकनाथ शर्मा, बनारस सन् 1929 ई0

6 डॉ0 सद् गुरुशरण अवस्थी साहित्य तरंग पृ0सं0–2

7. सं0 पं0 शिवदत्त, अमरकोष पृ0सं0–72

8. रूपभेद प्रमाणानि भाव लावण्य योजनम् सादृश वर्णिका भंगः इति चित्र षड़कम्।।

(पं0 यशोधर वात्स्यायन कामसूत्र1/31/15)

9. प्रो0 बलदेव उपाध्याय भारतीय साहित्य शास्त्र पृं0सं0 –207

10. भामह का काव्यालंकार –12 और दण्डी का काव्यादर्श पृ0सं0–3

11. डॉ0 भोलानाथ सम्मेलन पंजिका कला पृ0सं0–24

12. डॉ0 बासुदेवशरण अग्रवाल कला और संस्कृति पृ0सं0–224

13. उपरिवत् पृ0सं0–224

14. डॉ0 भोलानाथ तिवारी सम्मेलन पत्रिका पृ0सं0–17

15. काव्यदर्पण (पटना) 1951 काव्यशास्त्र की भूमिका पृ0सं0–27

16. साहित्य संगीत कला विहीन।

साक्षात पशुः पुच्छ विषाण हीनः।।

(नीतिशतक श्लोक–12)

17. डॉ0 भोलानाथ तिवारी, सम्मेलन पत्रिका पृ0सं0–2

18. श्री विष्णुधामेत्तिर पुराण, चित्रसूत्र (5.7)/35

19. डॉ0 भोलानाथ तिवारी, सम्मेलन पत्रिका पृ0सं0–21

20. डॉ0 नगेन्द्र अरस्तू का काव्य शास्त्र, पृ0सं0–6

21 उपरिवत्–पृ0सं0–6

22. टाल्सटाय, व्हाट इज आर्ट ? पृ0सं0–123

23. डॉ0 जैनेन्द्र कुमार साहित्य का श्रेय और प्रेय, पृ0सं0–20

24. गिबर्ट ऐण्ड कोहन ए हिस्ट्री ऑफ ऐस्थेटिक्स, पृ0सं0–485